**ओ३म्**

**‘मनुष्य जीवन में बह्म में निष्ठा का महत्व’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

ब्रह्म सबसे बड़ी सत्ता को कहते हैं। ईश्वर संसार में सबसे बड़ा होने के कारण ब्रह्म कहलाता है। यज्ञ के मुख्य पुरोहित को भी यज्ञ का ब्रह्मा कहकर सम्बोधित करते हैं। ब्रह्म में निष्ठा का होना ब्रह्मनिष्ठा कहा जाता है। आद्य स्वामी शंकराचार्य जी ने **‘विवेक-चूडामणि’** नाम से एक ग्रन्थ का प्रणयन किया था। इसका आरम्भ मंगलाचरण एवं ब्रह्मनिष्ठा का महत्व शीर्षकान्तर्गत श्लोकों से होता है। इन दोनों शीर्षकों के अन्तर्गत स्वामीजी ने जो विचार प्रस्तुत किए हैं वह अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के कारण हम इस लेख में प्रस्तुत कर रहे हैं। मंगलाचरण में स्वामी जी कहते हैं कि जो ईश्वर अज्ञेय होकर भी सम्पूर्ण वेदान्त के सिद्धान्त-वाक्यों से जाने जाते हैं उस परमानन्दस्वरूप सद्गुरुदेव गोविन्द को मैं प्रणाम करता हूं। यहां स्वामीजी ईश्वर अर्थात् ब्रह्म को अज्ञेय बताते है। अज्ञेय उसे कहते है जिसे जाना नहीं जा सकता। वह अज्ञेय ईश्वर ही सम्पूर्ण वेदान्त के सिद्धान्त-वाक्यों से जाने जाते हैं। अर्थात् यदि ईश्वर को जानना हो तो उस अज्ञेय ईश्वर को वेदान्तदर्शन का अध्ययन कर जाना जा सकता है, यह सत्य है। ब्रह्मनिष्ठा का महत्व बताते हुए पहले मन्त्र में उन्होंने कहा है कि जीवों का प्रथम तो नर अर्थात् मनुष्य जन्म ही दुर्लभ है, उससे भी पुरुषत्व और उससे भी ब्राह्मणत्व का मिलना कठिन है, ब्राह्मण होने से भी वैदिक धर्म का अनुगामी होना और उससे भी विद्वता का होना कठिन है। यह सब कुछ होने पर भी आत्मा और अनात्माका विवेक, सम्यक् अनुभव, ब्रह्म-आत्म-भाव से स्थिति और मुक्ति-ये तो करोड़ों जन्मों में किये हुए शुभ कर्मों के परिपाक के बिना प्राप्त हो ही नहीं सकते। दूसरे श्लोक में आपने कहा है कि ईश्वर की कृपा से ही जिसकी प्राप्ति हो सकती है वे मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व अर्थात् मुक्त होने की इच्छा और महान् पुरुषों का संग-ये तीनों ही दुर्लभ हैं। इसके आगे वह कहते हैं कि किसी प्रकार इस दुर्लभ मनुष्यजन्म को पाकर और उसमें भी, जिसमें श्रुति अर्थात् वेद के सिद्धान्तों का ज्ञान होता है, ऐसा पुरुषत्व पाकर जो मूढ़बुद्धि अपने आत्मा की मुक्ति के लिये प्रयत्न नहीं करता, वह निश्चय ही आत्मघती है, वह असत् में आस्था रखने के कारण अपने को नष्ट करता है। सरल शब्दों में शंकराचार्य जी ने कहा है कि वेद का ज्ञान मनुष्य जीवन में ही हो सकता है। ऐसा जीवन प्राप्त होने पर भी जो अपनी आत्मा की मुक्ति वा मोक्ष के लिए प्रयत्न नहीं करता वह मूढ़ बुद्धि और आत्मघाती है अर्थात् वह असत् अर्थात् ईश्वर के विपरीत जड़ पदार्थों में आसक्त होकर अपने जीवन को नष्ट करता है। इस श्रेणी में संसार के 99 प्रतिशत से अधिक लोग आते हैं और हम स्वयं भी इसी श्रेणी में हैं। यह महद् आश्चर्य की बात है। इसके आगे आप कहते हैं कि दुर्लभ मनुष्य-देह और उसमें भी पुरुषत्व को पाकर जो स्वार्थ साधन अर्थात् ईश्वर व मोक्ष की प्राप्ति में प्रमाद करता है, उससे अधिक मूढ़ और कौन होगा? वह कहते हैं कि भले हि कोई शास्त्रों की व्याख्या करें, अग्निहोत्र यज्ञ वा देवयज्ञ करें, नाना शुभ कर्मों को करें अथवा देवताओं को भजें तथापि जब तक ब्रह्म और आत्मा के यथार्थ स्वरूप का बोध नहीं होता तब तक ब्रह्मा के 100 कल्पों अर्थात् 8.64×100 अरब वर्षों के बीत जाने पर भी मुक्ति नहीं हो सकती अर्थात् दुःखों से नहीं छूट सकता। वह कहते हैं कि धन से अमृतत्व की आशा नहीं है एवं यह धन-समृद्धि मुक्ति का हेतु कर्म नहीं है, इस बात को वेद स्पष्ट बतलाते हैं। उपर्युक्त विचार स्वामी शंकराचार्य जी ने प्रकट किये हैं। यह सभी विचार महर्षि दयानन्द को भी अभीष्ट वा स्वीकार्य थे। ज्ञानी, समझदार व स्वयं को शिक्षित व्यक्ति कहलाने वालों को स्वामी शंकराचार्य जी द्वारा कहे गये एक-एक शब्द पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये और अपना भावी पथ प्रशस्त करना चाहिये।

**मनमोहन कुमार आर्य**

इसके बाद स्वामी शंकराचार्य ने जो विचार प्रस्तुत किये हैं उन्हें ज्ञानोपलब्धि के उपाय कहा जा सकता है। वह लिखते हैं कि इस कारण विद्वान् मनुष्य को सम्पूर्ण बाह्य भोगों की इच्छा त्यागकर सन्त शिरोमणि गुरूदेव की शरण में जाकर उनके उपदेश किये हुए विषय में समाहित होकर अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्न करें। इस पर हमारा कहना है कि स्वामी शंकराचार्य जी के बाद मुक्ति पथ पर आरुढ़ कराने वाले एकमात्र गुरूदेव स्वामी दयानन्द सरस्वती हुए हैं। उनका समस्त साहित्य मनुष्यों को मुक्ति पथ का पथिक बनाता है और उस पर चलकर मुक्ति को प्राप्त किया जा सकता है। शंकराचार्यजी आगे कहते हैं कि निरन्तर सत्य वस्तु ईश्वर के दर्शन में स्थित रहता हुआ उपासक योगारूढ़, ध्यानावस्थित वा समाधिस्थ होकर संसार-समुद्र में डूबी हुई अपनी आत्मा का आप ही उद्धार करे। योगाभ्यासी व आत्मा की उन्नति के लिए प्रयासरत धीर वा विवेकी विद्वानों को सम्पूर्ण असत् वा मुक्ति विरोधी कर्मों का त्याग कर भव-बन्धन की निवृति के लिये प्रयत्न करना चाहिये। भलीभांति विचार करने से सिद्ध व प्राप्त होने वाला निर्भ्रान्त ज्ञान भ्रम से उत्पन्न हुए महान् दुःखों को नष्ट करने वाला होता है। वह कहते हैं कि ईश्वर के प्रति कल्याणप्रद प्रार्थना व स्तुति वचनों द्वारा ही सत्यस्वरूप परमेश्वर का आत्मा में निश्चय होता है। ईश्वर के यथार्थ स्वरूप का निश्चय केवल स्नान, दान या सैकड़ों प्राणयामों से नहीं हो सकता है।

इसके बाद स्वामीजी महाराज ने जो बातें कहीं है उन्हें अधिकारि-निरूपण कह सकते हैं। वह लिखते हैं कि मुख्यतः अधिकारी साधक को ही ईश्वर उपासना के फल की सिद्धि होती है, देश काल आदि उपाय भी उसमें सहायक अवश्य होते हैं। अतः ब्रह्मवेताओं में श्रेष्ठ दयासागर योग्य गुरुदेव की शरण में जाकर जिज्ञासु को आत्म-तत्व का विचार करना चाहिये। स्वाध्याय भी इस कार्य में सहायक रहता है अतः हमारी दृष्टि में वेद, उपनिषद, दर्शन व सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों का अध्ययन करना भी उपयोगी रहता है। साधक को कैसा होना चाहिये, इसका उत्तर देते हुए स्वामी शंकराचार्य जी कहते हैं कि जो बुद्धिमान् हो, विद्वान हो और तर्क-वितर्क में कुशल हो, ऐसे लक्षणों वाला पुरुष ही आत्म विद्या का अधिकारी होता है। यहां साधक व भक्त के लिए बुद्धिमान व विद्वान होना तथा तर्क-वितर्क में कुशल होना आवश्यक बताया गया है। आजकल इसकी उपेक्षा की जाती है परन्तु यह विचार महर्षि दयानन्द जी के विचारों व मान्यताओं के पोषक हैं। इससे अतीव महत्वपूर्ण बात स्वामी जी कहते हैं कि जो सदसद-विवेकी, वैराग्यवान्, शम-दमादि षट्सम्पतियुक्त और मुमुक्षु हो उसी में ब्रह्-जिज्ञासा की योग्यता मानी गयी है। स्वामी जी की यह मान्यतायें ऐसी हैं जिनकी आजकल प्रायः सभी भक्तजन उपेक्षा करते हैं। इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। धर्म प्रचारकों को मुख्यतः इस पर अपना ध्यान केन्द्रित रखकर धर्म प्रचार करना चाहिये।

इसके बाद का अध्याय साधन-चतुष्टय के नाम से जाना जाता है। इस अध्याय में स्वामी शंकराचार्य जी कहते हैं कि यहां मनस्वियों ने जिज्ञासा के चार साधन बताये। उनके होने से ही सत्यस्वरूप आत्मा अर्थात् परमात्मा में स्थिति हो सकती है, उसके बिना नहीं। चार साधनों में पहला साधन नित्य व अनित्य वस्तुओं में विवेक को माना जाता है। दूसरा लौकिक एवं पारलौकिक सुख-भोग में वैराग्य होना है, **तीसरा शम, दम, उपरति, तितिक्ष, श्रद्धा व समाधान-ये छः सम्पत्तियां हैं** और चौथा व अन्तिम मुमुक्षुता है। ब्रह्म अर्थात् ईश्वर का अस्तित्व सत्य है। इसमें किसी को भी भ्रमित नहीं होना चाहिये। वैज्ञानिकों व बहुत से शिक्षित मनुष्यों द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार न करने व बहुतों के ईश्वर के वास्तविक स्वरूप से भिन्न स्वरूप को मानने से संसार में बहुत से अनर्थ हुए हैं व हो रहे हैं। अतः ब्रह्म सत्य है, इसमें सभी को पूरी निष्ठा रखनी चाहिये। ब्रह्म चेतन है तथा यह जगत जड़ है। अतः यदि चेतन तत्व सत्य है तो अचेतन व जड़ तत्व के विरोधी गुणों का होने के कारण इसे असत् कहा जाता है। जहां कार्य प्रकृति वा सृष्टि को असत कहा जाता है इसका अर्थ यह मानना चाहिये कि यह सृष्टि चेतन तत्व ईश्वर के विरोधी गुण वाली है। इस प्रकार के निश्चय को ही **‘नित्यानित्यवस्तु-विवेक’** कहते हैं। नेत्रों से दर्शन व श्रो़त्रों से श्रवण आदि के द्वारा मानव शरीर देह से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त सम्पूर्ण अनित्य भोग्य पदार्थों में जो आवश्यकतानुसार त्याग भाव से भोग करने व अधिक के प्रति जो घृणा बुद्धि है, वही **‘वैराग्य’** कहलाता है। बारम्बार इन्द्रियों के विषयों के प्रति दोष-दृष्टि रखने से वैराग्य उत्पन्न होकर चित्त का अपने लक्ष्य ब्रह्म में स्थिर हो जाना ही **‘शम’** है। पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय, दोनों को उनके विषयों से पृथक कर व खींच कर अपने-अपने इन्द्रिय गोलक में स्थित करना व उनको विषयों से रोकना **‘दम’** कहलाता है। चित्त की वृत्तियों या बोलचाल की भाषा में मनोवृत्ति का बाह्य विषयों का आश्रय न लेना व उन पर संयम करना ही **‘उपरति’** है। चिन्ता और शोक से रहित होकर बिना कोई प्रतिकार किये सब प्रकार के कष्टों का सहन करना **‘तितिक्षा’** कहलाती है। श्रद्धा आर्ष शास्त्रों और ब्रह्म व वेद ज्ञानी गुरूओं में विश्वास बुद्धि करने को कहते हैं जिससे की इच्छित वस्तु की प्राप्ति होती है। **‘समाधान’** अपनी बुद्धि को सब प्रकार शुद्ध़ ब्रह्म में ही सदा स्थिर रखने को कहते हैं। चित्त की सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति का नाम समाधान नहीं है। **‘मुमुक्षता’** अहंकार से लेकर देहपर्यन्त जितने अज्ञान-कल्पित बन्धन हैं, उनको अपने स्वरूप के ज्ञान द्वारा त्यागने की इच्छा को कहते हैं। मुमुक्षुता मन्द और मध्यम भी हो तो वैराग्य तथा शमादि षट्सम्पत्ति और गुरुकृपा से बढ़कर फल उत्पन्न करती है। शंकराचार्यजी कहते हैं कि जिस पुरुष में वैराग्य और मुमुक्षुत्व तीव्र होते हैं, उसी में शमादि चरितार्थ और सफल होते हैं। यह बात व्यवहारिक उदाहरणों से सत्य सिद्ध है। आगे वह लिखते हैं जहां इन वैराग्य अैर मुमुक्षुत्व की मन्दता है वहां शामादि का भी मरूस्थल में जल-प्रतीति के समान आभासमात्र ही समझना चाहिये। मुक्ति की कारणरूप सामग्री में भक्ति ही सबसे बढ़कर है और अपने वास्तविक स्वरूप का अनुसन्धान करना ही **‘भक्ति’** कहलाता है। कोई-कोई **‘स्वात्म-तत्व का अनुसंधान ही भक्ति है’**, ऐसा कहते हैं। भक्ति की इस परिभाषा को धर्मपे्रमियों को समझना चाहिये। प्रायः सभी मतों के भक्तों में भक्ति के इस अनिवार्य गुण की उपेक्षा देखी जाती है।

हमने इस लेख में जो वर्णन किया है वह अपने अध्ययन के अनुसार और वैदिक मत से पोषित विचारों के अनुरूप है। महर्षि दयानन्द ने कहा है कि ज्ञान कहीं से भी प्राप्त हो उसे प्राप्त कर लेना चाहिये। इसी विचार से महर्षि दयानन्द के विचारों की पुष्टि करने वाले आद्य शंकराचार्य जी के कुछ विचारों को उनकी पुस्तक से प्रस्तुत किया है। पाठक इन पर विचार करेंगे और अपने हित-अहित के अनुसार अपने जीवन की दिशा निर्धारित करेंगे, ऐसी हम अपेक्षा करते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**